International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 7 Ver. I || July. 2018 || PP. 100-103

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्यिक दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन

सिया राम मीणा ,
सह आचार्य , हिन्दी विभाग , बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय , अलवर , (राज.) 301001

शोध सारांश

हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने की परंपरा में हिंदी साहित्य जगत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का सदा ऋणी है। दूसरे शब्दों में हिन्दी साहित्यिक आलोचना की लेखन परंपरा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने इस क्षेत्र में बहुत प्रसिद्धि या गौरव अर्जित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्यिक आलोचना लिखने की परंपरा को जारी रखते हुए हिंदी साहित्य का इतिहास (1929) लिखा, जो मूल रूप से नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी शब्द सागर की प्रस्तावना के रूप में लिखा गया था। वास्तव में यदि यह कहें कि यह प्रथम व्यवस्थित और वैज्ञानिक इतिहास था तो यह किसी भी प्रकार से गलत नहीं होगा। मनोविकृति पर शुक्ल जी का निबंध परिवर्तित ज्ञान की उपज है। उनमें भावनाओं के मनोवैज्ञानिक रूप को स्पष्ट किया गया और मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण किया गया। व्यक्ति का व्यवहार उसकी भावनाओं से आकार लेता है – इस दृष्टि से शुक्ल जी ने उसके सामाजिक महत्व का सावधानीपूर्वक अन्वेषण किया और उसके आलोचनात्मक गद्य का हिन्दी गद्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। शुक्ल जी का "हिंदी साहित्य का इतिहास" हिंदी का गौरवपूर्ण ग्रंथ है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया आवर्तीकरण, साहित्यिक धाराओं का सार्थक निरूपण तथा कवियों का चारित्रिक मूल्यांकन इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। शुक्ल जी की कविताओं में उनकी देशभक्ति प्रकृति के प्रति प्रेम और सावधान सामाजिक भावों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। अनुवाद में उनकी पुस्तकें भाषा की उनकी स्वाभाविक निपुणता का प्रमाण हैं। आचार्य शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक थे। उन्होंने जिस क्षेत्र में काम किया उसमें अपनी अमिट छाप छोड़ी। आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र में उनकी ख्याति एक अग्रणी की है।

जीवन परिचय :–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ईस्वी में उत्तर प्रदेश बस्ती जिले के अगोना नामक गांव में हुआ था। इनकी माता जी का नाम विभाषी था और पिता पं॰ चंद्रबली शुक्ल की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हुई तो समस्त परिवार वहीं आकर रहने लगा। जिस समय शुक्ल जी की अवस्था नौ वर्ष की थी, उनकी माता का देहान्त हो गया। मातृ सुख के अभाव के साथ–साथ विमाता से मिलने वाले दुःख ने उनके व्यक्तित्व को अल्पायु में ही परिपक्व बना दिया।

अध्ययन के प्रति लग्नशीलता शुक्ल जी में बाल्यकाल से ही थी। किंतु इसके लिए उन्हें अनुकूल वातावरण न मिल सका। मिर्जापुर के लंदन मिशन स्कूल से सन् 1901 में स्कूल फाइनल परीक्षा (१०।) उत्तीर्ण की। उनके पिता की इच्छा थी कि शुक्ल जी कचहरी में जाकर दफ्तर का काम सीखें, किंतु शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। पिता जी ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रुचि वकालत में न होकर साहित्य में थी। अतः परिणाम यह हुआ कि वे उसमें अनुत्तीर्ण रहे। शुक्ल जी के पिताजी ने उन्हें नायब तहसीलदारी की जगह दिलाने का प्रयास किया, किंतु उनकी स्वाभिमानी प्रकृति के कारण यह संभव न हो सका।

1903 से 1908 तक 'आनन्द कादम्बिनी' के सहायक संपादक का कार्य किया। 1904 से 1908 तक लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग के अध्यापक रहे। इसी समय से उनके लेख पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगे और धीरे–धीरे उनकी विद्वता का यश चारों ओर फैल गया। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर 1908 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिन्दी शब्दसागर के सहायक संपादक का कार्य–भार सौंपा जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया। श्यामसुन्दरदास के शब्दों में 'शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पं. रामचंद्र शुक्ल को प्राप्त है। वे नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भी संपादक रहे। 1919 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त हुए जहाँ बाबू श्याम सुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 से जीवन के अंतिम काल (1941) तक विभागाध्यक्ष का पद सुशोभित किया। 2 फरवरी, सन् 1941 को हृदय की गति रुक जाने से शुक्ल जी का देहांत हो गया।

आलोचनात्मक ग्रंथ : सूर, तुलसी, जायसी पर की गई आलोचनाएं, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रसमीमांसा आदि शुक्ल जी की आलोचनात्मक रचनाएं हैं।

निबन्धात्मक ग्रन्थ : उनके निबन्ध चिंतामणि नामक ग्रंथ के दो भागों में संग्रहीत हैं। चिंतामणि के निबन्धों के अतिरिक्त शुक्लजी ने कुछ अन्य निबन्ध भी लिखे हैं, जिनमें मित्रता, अध्ययन आदि निबन्ध सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्ध हैं। मित्रता निबन्ध जीवनोपयोगी विषय पर लिखा गया उच्चकोटि का निबन्ध है जिसमें शुक्लजी की लेखन शैली गत

विशेषतायें झलकती हैं। क्रोध निबन्ध में उन्होंने सामाजिक जीवन में क्रोध का क्या महत्व है, क्रोधी की मानसिकता–जैसै समबन्धित पेहलुओ का विश्लेश्ण किया है। शुक्ल जी की अनूदित कृतियां कई हैं। 'शशांक' उनका बंगला से अनुवादित उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी से विश्वप्रपंच, आदर्श जीवन, मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, कल्पना का आनन्द आदि रचनाओं का अनुवाद किया। आनन्द कुमार शुक्ल द्वारा "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अनुवाद कर्म" नाम से रचित एक ग्रन्थ में उनके अनुवाद कार्यों का विस्तृत विवरण दिया **गया है।**

भाषा

शुक्ल जी के गद्य–साहित्य की भाषा खड़ी बोली है और उसके प्रायः दो रूप मिलते हैं –

क्लिष्ट और जटिल

गंभीर विषयों के वर्णन तथा आलोचनात्मक निबंधों में भाषा का क्लिष्ट रूप मिलता है। विषय की गंभीरता के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है। गंभीर विषयों को व्यक्त करने के लिए जिस संयम और शक्ति की आवश्यकता होती है, वह पूर्णतः विद्यमान है। अतः इस प्रकार को भाषा क्लिष्ट और जटिल होते हुए भी स्पष्ट है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है।

सरल और व्यवहारिक

भाषा का सरल और व्यवहारिक रूप शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबंधों में मिलता है। इसमें हिंदी के प्रचलित शब्दों को ही अधिक ग्रहण किया गया है यथा स्थान उर्दू और अंग्रेज़ी के अतिप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा को अधिक सरल और व्यवहारिक बनाने के लिए शुक्ल जी ने तड़क–भड़क अटकल–पच्चू आदि ग्रामीण बोलचाल के शब्दों को भी अपनाया है। तथा नौ दिन चले अढ़ाई कोस, जिसकी लाठी उसकी भैंस, पेट फूलना, काटों पर चलना आदि कहावतों व मुहावरों का भी प्रयोग निस्संकोच होकर किया है।

शुक्ल जी का दोनों प्रकार की भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वह अत्यंत संभत, परिमार्जित, प्रौढ़ और व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण निर्दोष है। उसमें रंचमात्र भी शिथिलता नहीं। शब्द मोतियों की भांति वाक्यों के सूत्र में गुंथे हुए हैं। एक भी शब्द निरर्थक नहीं, प्रत्येक शब्द का अपना पूर्ण महत्व है।

शैली

शुक्ल जी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की पूरी–पूरी छाप है। यही कारण है कि प्रत्येक वाक्य पुकार कर कह देता है कि वह उनका है। सामान्य रूप से शुक्ल जी की शैली अत्यंत प्रौढ़ और मौलिक है। उसमें गागर में सागर पूर्ण रूप से विद्यमान है। शुक्ल जी की शैली के मुख्यतः तीन रूप हैं –

आलोचनात्मक शैली

शुक्ल जी ने अपने आलोचनात्मक निबंध इसी शैली में लिखे हैं। इस शैली की भाषा गंभीर है। उनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है। वाक्य छोटे–छोटे, संयत और मार्मिक हैं। भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि उनको समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

गवेषणात्मक शैली

इस शैली में शुक्ल जी ने नवीन खोजपूर्ण निबंधों की रचना की है। आलोचनात्मक शैली की अपेक्षा यह शैली अधिक गंभीर और दुरूह है। इसमें भाषा क्लिष्ट है। वाक्य बड़े–बड़े हैं और मुहावरों का नितान्त अभाव है।

भावात्मक शैली

शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबंध भावात्मक शैली में लिखे गए हैं। यह शैली गद्य–काव्य का सा आनंद देती है। इस शैली की भाषा व्यवहारिक है। भावों की आवश्यकतानुसार छोटे और बड़े दोनों ही प्रकार के वाक्यों को अपनाया गया है। बहुत से वाक्य तो सूक्ति रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे – बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।

इनके अतिरिक्त शुक्ल जी के निबंधों में निगमन पद्धति, अलंकार योजना, तुकदार शब्द, हास्य–व्यंग्य, मूर्तिमत्ता आदि अन्य शैलीगत विशेषताएं भी मिलती हैं।

साहित्य में स्थान

शुक्ल जी शायद हिन्दी के पहले समीक्षक हैं जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया। उन्होंने 'भाव या रस' को काव्य की आत्मा माना है। पर उनके विचार से काव्य का अंतिम लक्ष्य आनन्द नहीं बल्कि विभिन्न भावों के परिष्कार, प्रसार और सामंजस्य द्वारा लोकमंगल की प्रतिष्ठा है। उनकी दृष्टि से महान् काव्य वह है जिससे जीवन की क्रियाशीलता उजागर हुई हो। इसे उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था कहा है। शुक्ल जी की समस्त मौलिक विचारणा लोकजीवन के मूर्त आदर्शों से प्रतिबद्ध है। 'हमारे हृदय का सीधा लगाव प्रकृति के गोचर रूपों से है' इसलिए कवि का सबसे पहला और आवश्यक काम 'बिंबग्रहण' या 'चित्रानुभव' कराना है।

पूर्ण विंबग्रहण के लिए वर्ण्य वस्तु की 'परिस्थिति' का चित्रण भी अपेक्षित होता है। इस प्रकार शुक्ल जी काव्य द्वारा जीवन के समग्र बोध पर बल देते हैं। जीवन में और काव्य में किसी तरह की एकांगिता उन्हें अभीष्ट नहीं।

शुक्ल जी की स्थापनाएँ शास्त्रबद्ध उतनी नहीं हैं जितनी मौलिक। उन्होंने अपनी लोकभावना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यशास्त्र का संस्कार किया। इस दृष्टि से वे आचार्य कोटि में आते हैं। काव्य में लोकमंगल की भावना शुक्ल जी की समीक्षा की शक्ति भी है और सीमा भी। उसकी शक्ति काव्यनिबद्ध जीवन के व्यावहारिक और व्यापक अर्थों के मार्मिक अनुसंधान में निहित है। पर उनकी आलोचना का पूर्वनिश्चित नैतिक केंद्र उनकी साहित्यिक मूल्यचेतना को कई अवसरों पर सीमित भी कर देता है उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि आलोच्य कवि की मनोगति की पहचान में अद्वितीय है।

जायसी, सूर और तुलसी की समीक्षाओं द्वारा शुक्ल जी ने व्यावहारिक आलोचना का उच्च प्रतिमान प्रस्तुत किया। इनमें शुक्ल जी की काव्यमर्मज्ञता, जीवनविवेक, विद्वत्ता और विश्लेषणक्षमता का असाधारण प्रमाण मिलता है। काव्यगत संवेदनाओं की पहचान, उनके पारदर्शी विश्लेषण और यथातथ्य भाषा के द्वारा उन्हें पाठक तक संप्रेषित कर देने की उनमें अपूर्व सामर्थ्य है। इनके हिंदी साहित्य के इतिहास की समीक्षाओं में भी ये विशेषताएँ स्पष्ट हैं।

शुक्ल जी के मनोविकार सम्बंधी निबन्ध परिणत प्रज्ञा की उपज हैं। इनमें भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट किया गया है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है। भावों के अनुरूप ही मनुष्य का आचरण ढलता है– इस दृष्टि से शुक्ल जी ने उनकी सामाजिक अर्थवत्ता का मनोयोगपूर्वक अनुसंधान किया। उन्होंने मनोविकारों के निषेध का उपदेश देनेवालों पर जबर्दस्त आक्रमण किया और मनोवेगों के परिष्कार पर जोर दिया। ये निबंध व्यावहारिक दृष्टि से पाठकों को अपने आपको और दूसरों को सही ढंग से समझने में मदद देते हैं तथा उन्हें सामाजिक दायित्व और मर्यादा का बोध कराते हैं। समाज का संगठन और उन्नयन करनेवाले आदर्शों में आस्था इन रचनाओं का मूल स्वर है। भावों को जीवन की परिचित स्थितियों से संबद्ध करके काव्य की दृष्टि से भी उनका प्रामाणिक निरूपण हुआ है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार शुक्ल जी की समालोचना, विद्वतापूर्ण चिंतन मौलिक चर्चा और गहन अवलोकन का ऐतिहासिक मानदंड है।अपने सर्वोत्तम रूप में शुक्ल जी का विवेचनात्मक गद्य पारदर्शी है। गहन विचारों को सुसंगत ढंग से स्पष्ट कर देने की उनमें असामान्य क्षमता है। उनके गद्य में आत्मविश्वासजन्य दृढ़ता की दीप्ति है। उसमें यथातथ्यता और संक्षिप्तता का विशिष्ट गुण पाया जाता है। शुक्ल जी की सूक्तियाँ अत्यंत अर्थगर्भ होती हैं। उनके विवेचनात्मक गद्य ने हिंदी गद्य पर व्यापक प्रभाव डाला है। शुक्ल जी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी का गौरवग्रंथ है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया कालविभाग, साहित्यिक धाराओं का सारर्थक निरूपण तथा कवियों की विशेषताबोधक समीक्षा इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। शुक्ल जी की कविताओं में उनके प्रकृतिप्रेम और सावधान सामाजिक भावों द्वारा उनका देशानुराग व्यंजित है। इनके अनुवादग्रंथ भाषा पर इनके सहज आधिपत्य के साक्षी हैं। आचार्य शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उसपर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। आलोचना और निबंध के क्षेत्र में उनकी प्रतिष्ठा युगप्रवर्तक की है। "काव्य में रहस्यवाद" निबंध पर इन्हें हिन्दुस्तानी अकादमी से ५०० रुपये का तथा चिंतामणि पर हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग द्वारा १२०० रुपये का मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

सन्दर्भ सूची :–

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृष्ठ – 550

2. रचना और समालोचना – डॉ. हरदयाल

3. हिंदी आलोचना प्रवृतियाँ और आधार भूमि – डॉ. रामदर्शन मिश्र

4. आधुनिक हिंदी आलोचना एक पुनर्विचार – डॉ. सुंदरलाल कथूरिया

5. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी – डॉ. निर्मला जैन

6. हिंदी आलोचना – विश्वनाथ त्रिपाठी , पृष्ठ – 67

7. हिंदी आलोचना – विश्वनाथ त्रिपाठी , पृष्ठ – 67

8. डॉ . नगेन्द्र विश्लेषण और मूल्यांकन – डॉ. एस. लक्ष्मी

9. हिंदी साहित्य कोश (भाग – 2 – ज्ञानमंडल लिमिटेड)

10. रामचन्द्र शुक्ल – डॉ. सत्यदेव मिश्र

11. आजकल (पत्रिका) – अक्टूबर 2009

12. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – रामचंद्र तिवारी

13. रस मीमांसा , पृष्ठ – 217

14. विश्वनाथ त्रिपाठी हिंदी आलोचना पृष्ठ – 55

15. चिंतामणि भाग – 2 पृष्ठ– 103

16. हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृष्ठ –249

17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (०५ मार्च २००७), भ्रमर गीत सार, विश्वविद्यालय प्रकाशन द्य